

## प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का महत्त्व

पूनमचन्द\*

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की प्रगति के लिए शिक्षा नितांत आवश्यक है। शिक्षा सभ्यता व संस्कृति के प्रचार-प्रसार का माध्यम होती है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली अपने आप में गौरवमयी रही है। भारतीयों को सुसंस्कृत करने और विश्व के समक्ष मानवता का संदेश देने में भारतीय प्राचीन शिक्षा पद्धति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत का समस्त प्राचीन वाङ्मय आज तक सुरक्षित और संरक्षित है, इसका कारण तात्कालिक शिक्षा ही रही है। भारतीयों के लिए शिक्षा का तात्पर्य यह रहा है कि शिक्षा प्रकाश का स्रोत है तथा यह जीवन के प्रत्येक कार्य में हमारा मार्ग आलोकित करती है। विद्यार्थी गुरुकुल में निवास करके अध्ययन करता था। ब्रह्मचर्य शिक्षा ग्रहण करने की अनिवार्यता थी। सूत्र, वृत्ति, भाष्य, वार्तिक के रूप में विविध विधियों का प्रयोग किया जाता था। इन सबके सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक, आर्थिक महत्त्व है, जिनका संबंध राष्ट्र विकास से है।

प्राचीन वैदिक भारतीय शिक्षा मुख्यतः संस्कारात्मक थी। प्राचीन काल में शिक्षा का प्रारम्भ वेदारम्भ संस्कार एवम् यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार से होता था। विस्तृत दीक्षा प्रक्रिया के द्वारा बालक को द्विजत्व की प्राप्ति होती थी। उस संस्कार के अन्तर्गत बालकों को गायत्री मंत्र एवं वेदादि विद्याओं का परिचय दिया जाता था फिर उनकी शिक्षा आरम्भ होती थी। "दीक्षा" शब्द का तात्पर्य है, कुसंस्कारों के हटने की प्रक्रिया व सुसंस्कारों के आपादान की प्रक्रिया का प्रारम्भ होना। दीक्षा द्वारा बालक की बुद्धि धीरे-धीरे सूक्ष्म व संस्कारित होकर लौकिक विषयों को समझने व संसार के रहस्योद्घाटन करने में भी संक्षम होने लगती है।

वेदारम्भ संस्कार के बाद ही बालक की गुरुकुल में विधिवत् शिक्षा आरम्भ होती थी और ब्रह्मचर्य व्रत पालन के साथ ही तत्त्वचर्चा, तपश्चर्चा व वेदचर्चा आदि का अभ्यास शुरू हो जाता था।

ज्ञान प्राप्ति की पूर्ण प्रक्रिया को यजुर्वेद के इस मंत्र में बताया गया है—  
व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽप्नोति दक्षिणाम्।  
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्याप्यते।।

अर्थात् व्रत में दीक्षा की प्राप्ति होती है, दीक्षा से व्यवहार करने की कुशलता (दक्षिणा) प्राप्त होती है, और श्रद्धा रूपी दिव्य दृष्टि से पूर्ण सत्य की साक्षात् अपरोध अनुभूति होती है। वास्तव में व्रत-ग्रहण के समय भी श्रद्धा आवश्यक है। व्रत-पालन से वही श्रद्धा विकसित होकर सत्यदर्शन का नेत्र बन जाती है।

गीता में भी ज्ञान-प्राप्ति की इस प्रक्रिया को बताया है—  
श्रद्धावोल्लस्यते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।  
ज्ञानं लब्ध्वा परां षान्तिमचिरणाधिगच्छति।।

( गीता 4:39)

\*शोधार्थी, शिक्षा-विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाडा।

अर्थात् श्रद्धावान् होकर इन्द्रियों व मन को संयम में रखता हुआ श्रद्धायुक्त होकर ईश्वर आराधना करता हुआ परम श्रद्धावाला वह साधक ज्ञान को प्राप्त करता है और ज्ञान होते ही शाश्वत शान्ति का अनुभव करने लगता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा इन मान्यताओं को लेकर चलती है, कि प्रत्येक बालक अथवा बालिका अनन्त पथ की यात्रा सम्पन्न करके आया है और अमरता को अनुभव कर लेने की सम्भावना से युक्त है, प्रत्येक बालक में अपने-अपने दिव्य-अदिव्य संस्कार व वासनाएं होती हैं, जो कि धीरे-धीरे अपनी बीजावस्था से अंकुरित होकर प्रकट होती है, युवावस्था में इन्हें स्पष्टतः पुत्रैषणा, वितैषणा व लौकैषणा के रूप में अनुभव किया जाता है, प्रत्येक मानव पर मातृऋण, पितृऋण, ऋषिऋण, देवऋण तथा भूतऋण होता है, जिनसे उऋण हुए बिना उसे अमरत्व का बोध नहीं हो सकता। इसलिए भारतीय प्राचीन वैदिक शिक्षा प्रत्येक बालक को धर्म, कर्म, अर्थ, काम के पुरुषार्थ का लक्ष्य देती है। इन पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए प्रमेय जगत् का ज्ञान अति आवश्यक है। देह इन्द्रिय-अन्तःकरण से तादात्म्य रखने वाला प्रमाता ही इस संघात को स्वस्थ-सुसंस्कृत करता हुआ त्रिविध पुरुषार्थों को सिद्ध करता है व इनसे ऊपर उठकर आत्मज्ञान को अर्थात् मोक्ष को भी प्राप्त करता है।

इसलिए भारतीय वैदिक शिक्षा के अन्तर्गत प्रमेय ज्ञान देने के साथ देह- इन्द्रिय अन्तकरण को स्वस्थ व सुसंस्कृत करने के लिए युक्त आहार-विहार विधित खेल, योगाभ्यास, उपासना अस्त्र-शास्त्र ज्ञान कला साहित्य, विज्ञान आदि कलाओं का अभ्यास आदि के प्रशिक्षण की भी अनिवार्यता व्यवस्था होती है। इसके बालक (विद्यार्थी) की तीनों एषणा भी सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत व संयमित होकर उर्ध्वगामी हो जाती है, ऐसा होने पर ही युवक अपने गृहस्थ जीवन के लिए पूर्ण तैयार हो जाता है।

### प्राचीन शिक्षा मन्दिर (गुरुकुल)

प्राचीन भारत में प्रत्येक गुरुकुल एक परिवार की तरह होता था। गुरुकुल के आचार्य, उनकी पत्नी व उनकी सन्तानें गुरुकुल के अभिन्न अंग होते थे। गुरुकुल के विद्यार्थियों के समक्ष आचार्य का जीवन एक खुली किताब की तरह होता था, छात्र आचार्य में एक आदर्श शिक्षक, एक आदर्श पिता, एक आदर्श भाई का जीया जा रहा जीवन साक्षात् देख पाते थे। आचार्य या तो आत्मज्ञानी होते थे या आत्मसाधना के पथ पर आगे बढ़ते हुए साधक होते थे। उनका आदर्श विद्यार्थियों के समक्ष होता था। आचार्य की पारदर्शी दृष्टि में विद्यार्थी के विकास को अवरुद्ध करने वाले तत्त्व छिपे नहीं रहते थे, उन्हें मन के चेतन स्तर पर लाकर उनका उन्मूलन कर दिया जाता था, मानव-मन में कुशल शिल्पी-आचार्य अपने छात्रों में उनके भावी व्यक्तित्व को पहचान कर तदनु रूप शिक्षा-दीक्षा देते थे। इस तरह समाज को कुशल शासक, कुशल अर्थशास्त्री, व्यापारी, कुशल शिक्षक, शिल्पकार आदि उपलब्ध होते रहते थे। विशेषकर गुरुकुलों में ही भावी गुरु प्रशिक्षित हो जाते थे। एतदर्थ अलग से शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की आवश्यकता ही नहीं थी।

गुरुकुलों में अपरा विद्या व परा विद्या इन दोनों विद्याओं को सिखाया जाता था। परा विद्या—आत्मा व ब्रह्म की एकता की अनुभूति को कहते हैं, इससे भिन्न जितने भी ज्ञान के लिए क्षेत्र हैं, चाहे वो कला, साहित्य, विज्ञान, व्याकरण आदि वे सब अपरा विद्या के अन्तर्गत हैं। बालक वेद-वेदांग व सूक्ष्म कलाओं तथा रवारथ्य-विज्ञान आदि का अध्ययन सुचारु रूप से कर लेता

था। शिक्षार्थी की परीक्षा निरन्तर होती रहती थी। एक वेद के अध्ययन को पूर्ण करने के लिए बारह वर्ष की अवधि आवश्यक समझी जाती थी। इस प्रकार भारतीय प्राचीन वैदिक शिक्षण प्रणाली के अन्तर्गत जिज्ञासा शक्ति को उद्दीप्त किया जाता था, साथ ही उनकी सर्जनात्मक शक्ति व प्रेम करने की शक्ति को भी शुद्ध सशक्त व उर्ध्वमुखी किया जाता है। इससे बालक स्वयं से जुड़ने व विश्व से जुड़ने की क्षमता का अर्जन करता हुआ सर्वात्मभाव के परम लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहता था। वर्तमान समय में व शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन आया है। वर्तमान समय में स्कूल कॉलेज में सदाचार आचरण आदि पर ध्यान नहीं दिया जाता है, सिर्फ किताबी ज्ञान दिया जाता है, जिससे सामाजिक परिस्थितियां विकट होती जा रही हैं। वर्तमान शिक्षा को लक्ष्य करके एक कवि ने कहा है कि –

“आशाथी की कॉलेज से मिलेगी शिक्षा।  
पर यह तो परीक्षा पास का यंत्र निकला।।  
घिसते घिसते पुस्तकों हम भी घिस गये।  
धैर्य, शक्ति और साहस निराशा में पिस गये।।

गुरुकुलों में शिक्षण की आयु निर्धारित थी जिससे पहले बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराई नहीं थी। गुरुकुलों में चरित्र निर्माण पर विशेष बल दिया जाता था। छात्र किसी भी प्रकार के व्यसनो से ग्रस्त नहीं होते थे, जबकि आधुनिक शिक्षाणालयों में छात्र चरस, स्मॉक, शराब आदि आदि व्यसनो से ग्रस्त दिखाई देते हैं। जिसका असर वर्तमान समय में समाज में चारों ओर देखा जा सकता है।

प्राचीन गुरुकुल प्रणाली में जाति कर्म के आधार पर होती है। वर्ण व्यवस्था होती थी गुरुकुल में जाति पाति अमीर गरीब का कोई भेद नहीं होता था। जबकि वर्तमान समय में शिक्षण संस्थानों में यह समस्या विकट होती जा रही है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा से मनुष्य मात्र का सम्पूर्ण विकास सम्भव है। यह शिक्षा पूर्णानन्द पूर्णज्ञान को प्राप्त करती है। प्रत्येक मनुष्य को उसके स्वभाव, रुचि व क्षमता के अनुसार विकसित होने का मार्ग प्रशस्त करती है। प्राचीन शिक्षा दर्शन के अनुसार व्यक्ति विकसित होता हुआ समाज व संस्कृति को पुष्ट करता है एवं समाज व संस्कृति विश्व संयोजन की और अग्रसर होती हुई व्यक्ति को विकसित करती है। और उसे अनुकूलता प्रदान करती है। पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के बाद भी उस जीवनमुक्त पुरुष को हर परिस्थिति में एक अमित विस्मय, अप्रतिम सौन्दर्य व असीम सुख का अनुभव होता रहता है। वह विश्व जीवन के साथ एक होकर जीवन को जीता है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन शिक्षा पद्धति भारत को उन्नति के शिखर पर ले जाती थी मगर कालान्तर बाद आधुनिक शिक्षा प्रणाली से अवनति की ओर अग्रसर है।